दोस्त के नाम

(यह पत्र शैली में एक व्यंग्य लेख है। लाहौर-निवासी एक व्यक्ति अपने कराची-निवासी और साहित्य व कला-प्रेमी मित्र से पत्र द्वारा पूछता है कि कराची में जो 'ललित-कला मंडली' स्थापित हुई है, तो क्या उसका कोई विरोध नहीं हुआ? इस लेख के द्वारा पतरस बुख़ारी ने उस ईर्ष्यापूर्ण प्रवृत्ति पर तीखा व्यंग्य किया है जिसके अंतर्गत कला या साहित्य के विकास के लिए किये जाने वाले प्रयासों का विरोध किया जाता है। कभी इस्लाम धर्म की आड़ ली जाती है और कभी संस्कृति व नैतिकता के ख़तरे की दुहाई दी जाती है। कथावाचक अपने कराची-वासी मित्र से बार-बार पूछता है : "क्या कराची में लोगों का यह विचार नहीं?" और फिर स्वयं ही कहता है कि "अगर नहीं, तो कराची सबसे अलग-थलग कोई जगह होगी।" अर्थात लाहौर में तो ऐसा ही होता है, और कराची में नहीं होता तो बहुत आश्चर्य की बात है। भारत में कट्टरपंथी हिन्दुओं द्वारा धर्म व संस्कृति और परंपरा के नाम पर फ़िल्म, कला व साहित्य में नवीनता या नए प्रयोगों आदि के ख़िलाफ़ विरोध, तोड़फोड़ और आगज़नी वही प्रवृत्ति है जो पाकिस्तान में इस्लाम के नाम पर विध्वंस मचाती है। लेख में पाकिस्तान या मुसलमानों में खुशख़ती (सुलेखन) और स्कूलों एवं कला-संस्थानों में कला की शिक्षा की दुर्दशा और कला को अधार्मिक कहकर उससे इनकार के रवैये पर भी तीखा व्यंग्य किया गया है। –अनुवादक)

***

लाहौर से

ऐ मेरे कराची के दोस्त!

चंद दिन हुए मैंने अख़बार में यह ख़बर पढ़ी कि कराची में एक ललित-कला मंडली स्थापित हुई है जो समय-समय पर चित्रों की प्रदर्शनी का प्रबंध करेगी। स्पष्ट रूप से मालूम न हो सका कि इसके कर्ता-धरता कौन दीवाने हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि आपको ऐसी बातों में बहुत रूचि है और मुद्दत से है और आप साहित्य और आर्ट का मर्म समझते हैं। इसलिए मुझे यक़ीन है कि आप इसमें ज़रूर शरीक होंगे। बल्कि आश्चर्य नहीं कि यह मंडली आप ही के प्रयासों का परिणाम हो और आप ही ने अपने आकर्षक व्यक्तित्व से ऐसे काव्य-मर्मज्ञ व साहित्य रसिक लोगों को एक बिंदु पर जमा कर लिया हो, जिन्हें रूचि तो है लेकिन आपके जैसा कला-अनुराग नहीं। यह सोचकर बहुत संतोष हुआ, क्योंकि अपने सहविचारी लोगों की एक मंडली बनाकर आपको एक प्रकार का हार्दिक सुख प्राप्त हुआ होगा। वरना अकेले-ही-अकेले पुस्तकों और चित्रों से प्रेम-वार्तालाप करते-करते इंसान थक जाता है। सुलझी रसिकता की शीतलता पर अकेलेपन की वहशत और कड़वाहट छाने लगती है। मनुष्य विक्षिप्त नहीं तो मानसिक दुर्बलता का शिकार ज़रूर हो जाता है, और ग़ालिब का एक मिसरा (पंक्ति) क़ाफ़िया (तुक) बदलकर पढ़ने को जी चाहता है कि:

मक़दूर (सामर्थ्य) हो तो साथ रखूँ राज़दाँ को मैं[1]

लेकिन ऐ दोस्त! क्या इस काम में किसी ने आपका विरोध नहीं किया? क्या किसी क्षेत्रीय समाचारपत्र ने जलकर नहीं लिखा कि पाकिस्तान पर संकट का समय आया हुआ है और आप जैसे बेशर्मों को चित्रकारी और मूर्तिकला का शौक़ चर्राया है? किसी ने जलते हुए नगर रोम और नीरू की सारंगी का जुमला नहीं मारा? किसी धर्म के ध्रुवतारा मौलवी ने मस्जिद में उपदेश देते हुए आपके आमोद-प्रमोद और मनोरंजन के प्रयास की

[1] *हैराँ हूँ दिल को रोऊँ या पीटूँ जिगर को मैं // मक़दूर हो तो साथ रखूँ नौहागर को मैं*

भर्त्सना नहीं की? और आप पर कुफ़्र (अधर्म) और शिर्क (अपधर्म) और इलहाद (विधर्म) का फ़तवा लगाकर लोगों को आपके ख़िलाफ़ नहीं उकसाया? और कुछ नहीं तो क्या किसी मूढ़ अवसरवादी अधिकारी ने सहानुभूति और शिष्टता की चाशनी मिलाकर आपको यह सुझाव नहीं दिया कि बरखुर्दारः

बबांग-ए-चंग मखुर मय कि मोहतसिब तेज़ अस्त?

(खुल्लम-खुला शराब मत पी क्योंकि मुहतसिब (नैतिक पुलिस) सख़्त है।)

और मान लीजिए इन बातों से बच निकले तो क्या प्रीतिभोज के अवसर पर किसी अर्ध-शिक्षित समकालीन ने, जो आपसे अधिक वेतन पाने का दावेदार है, आपके स्वतन्त्र-स्वभाव की खिल्ली नहीं उड़ाई? और जब आप पिटे हुए नज़र आए तो आप पर ठहाके बुलंद नहीं हुए?

अगर आपको इन चरणों से नहीं गुज़रना पड़ा तो कराची सबसे अलग-थलग कोई जगह होगी। या फिर वहाँ विमुखता और उदासीनता पक रही होगी और आपको अभी दिखाई या सुनाई न दी होगी। वरना जिस रसिकता पर आपको गर्व है, वह तो आजकल एक अनाथ मुहाजिर की भांति भूखी और नंगी किसी खन्डहर के कोने में सिर घुटनों में दिए दुबकी बैठी है और बाहर पड़ा-पड़ मेंह बरस रहा है। और आंधियाँ चल रही हैं।

पिछले साल क़ायद-ए-आज़म यहाँ तशरीफ़ लाए। और वह बाग़ जिसको "लॉरेंस-गार्डन" कहा करते थे, उसमें भूमि का जो टुकड़ा "रोज़-गार्डन" कहलाता था, वहाँ एक शानदार पार्टी हुई। उस दिन, जो पाकिस्तानी लाहौर का पहला जश्न का दिन था, रोज़-गार्डन का नाम "गुलिस्तान-ए-फ़ातिमा" रखा गया। और यह नाम एक बोर्ड पर लिखकर, बाग़ में जो छोटी सी सुर्ख़ ईंटों की सुन्दर मेहराब बनी है, उसके माथे पर लगा दिया गया। लेकिन उसकी किताबत (लिखाई) ऐसी घिनौनी और बचकाना थी कि मदरसे के लड़कों को भी किसी इंस्पेक्टर के आगमन पर ऐसी चीज़ लटकाते हुए शर्म आती। "गुलिस्तान-ए-फ़ातिमा" के सौन्दर्य-विहीन संयोजन को नज़रअंदाज़ कीजिए और इसकी कृत्रिमता को जाने दीजिए जिसकी बदौलत न वे ग़रीब ही इस नाम से परिचित होंगे जो दोपहर के समय वृक्षों की छाया में अपना धूल से अटा जूता सिर के नीचे रखकर उस बाग़ में सो जाते हैं, न वे पतलून-धारी ही उसमें कोई आकर्षण पाएँगे जो शाम के समय मोटरों में सवार होकर यहाँ टेनिस खेलने आते हैं। लेकिन जब सौन्दर्य-पिपासु इन पापी आँखों ने उसे यूँ एक नुमायाँ स्थान पर स्थापित देखा तो दृष्टि और दिल दोनों घायल हुए, क्योंकि ऐसे शानदार अवसर के लिए इससे कुरूप किताबत का प्रदर्शन कल्पना में न आ सकता था। मुसलमानों की क़ौम वह क़ौम है जो कई पीढ़ियों से ख़ुशनवीसी (सुलेखन) की कला की अलमबरदार है। जिसने क़ुरान-ए-पाक की हज़ारों प्रतियाँ इस कलात्मकता और कुशलता से लिखीं कि प्रकृति के कातिब (सुलेखक) ने भी उनको साधुवाद दिया होगा। पंजाब का क्षेत्र वह क्षेत्र है जिसे नस्तालीक़ लिपि की एक आधुनिक और सुन्दर शैली के आविष्कारक होने का गौरव प्राप्त है। लाहौर का शहर वह शहर है जहाँ हर गली में एक ख़ुशनवीस (सुलेखक) रहता है, और जहाँ स्वर्गीय हकीम फ़क़ीर मुहम्मद जैसे कला के उस्ताद पैदा हुए। इसपर यह हाल कि इस शुभ समारोह पर, इस शहर में, मुस्लिम क़ौम की ओर से प्रेम व श्रद्धा के सिर्फ़ दो शब्द लिखने पड़ें और उनके भी अक्षरों की गोलाइयाँ ग़लत हों और आसन बेढंगा हो। आप देखते तो निश्चित रूप से आपको उसकी तह में अरसिकता की पराकाष्ठा दिखायी देती, और आप दुखी हो जाते, और ढूँढते फिरते कि किसके पास जाकर शिकायत करूँ। और लोग आपको दीवाना समझते, और कुछ ऐसे भी होते कि इस छिद्रान्वेषण पर आपको बदतमीज़ कहते, या आपसे आशा रखते कि

आप हर दोष को सौन्दर्य समझें और सुन्दर कहें, वरना आप पर पाकिस्तान में कीड़े निकालने का आरोप लगता और आपकी देशभक्ति पर ऊँगली उठती।

अब यदि आप इस ललित-कला मंडली के चक्कर में अपने आपको किसी मंच पर पायें, और आपके सामने आपकी क़ौम के लोग जमा हों, और वे आपको मुँह खोलने की अनुमति दें, तो आप जो अपने सीने में हमदर्द दिल रखते हैं, यह कहने से खुद को कैसे रोक पाएँगे कि 'हे मुसलमानो! तुम्हारे पूर्वज रेखा और वृत्त और वक्रता और कोण के ऐसे रसिक व मर्मज्ञ थे कि दुनिया में इसकी कोई और मिसाल मुश्किल से मिलती है। कूफ़ी, तुग़रे[i], नस्तालीक़ और नस्ख़ लिपियाँ----- किस-किस ढंग से उन्होंने अक्षरों से प्रेम किया है! उनके सदनों में टंगी वसलियों[ii] को देखो, उनकी सोने का पानी चढ़ी और मुलम्मा की हुई पांडुलिपियों को देखो, उनके मक़बरों और महलों, उनकी मस्जिदों और ख़ानक़ाहों, उनके फ़रमानों और सिक्कों और मुहरों, उनकी क़ब्रों और उनके कतबों को देखो। जीवन या मृत्यु का कोई स्थान, ऐश्वर्य या दरिद्रता, आनंद या शोक, जश्न या जाप, एकांतवास या सार्वजनिक स्थल का कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ उन्होंने लेखनी उठाई हो और उनकी लेखनियों ने सुन्दर व मनमोहक अक्षरों की अमिट छाप लकड़ी व काग़ज़ और पत्थरों पर अंकित न कर दी हों। अब जबकि खुदा ने तुम्हें अपनी संस्कृति का पुनरुत्थान करने व सुरक्षा प्रदान करने के लिए सब शक्तियाँ तुम्हारे हाथ में दे दी हैं, प्रतिज्ञा कर लो कि इस धरोहर को हाथ से जाने न दोगे और संकल्प करलो कि आज से तुम्हारी दुकानों, तुम्हारे मकानों, तुम्हारे दफ़्तरों, तुम्हारी पुस्तकों और समाचारपत्रों और पत्रिकाओं, तुम्हारी मस्जिदों और तुम्हारे मज़ारों, तुम्हारे सरनामों और तुम्हारे नोटिस बोर्डों पर जहाँ-जहाँ तुम्हारे हाथ अक्षर की रेखाएँ खींचेंगे, पूर्वजों का नाम उज्ज्वल करेंगे। और जो मनोहरता और सूक्ष्मताएँ और नज़ाकतें उन्होंने सदियों में पैदा की हैं उन्हें विकृत न होने देंगे, ताकि जहाँ किसी को तुम्हारी लिखावट नज़र आए वह जान ले कि यह मुसलमान का लिखा हुआ है। उस क़ौम का लिखा हुआ है जिसने दुनिया में खुशख़ती (सुलेखन) की प्रतिष्ठा बढ़ाई और जो अब भी अपने सौन्दर्य-सृजन पर गर्व करती है।'

यह कहने से आप कैसे बाज़ आएँगे? लेकिन क्या आपकी बात कोई सुनेगा? क्या कराची में हैं ऐसे लोग? ललित-कला मंडली तो आपने बना ली है।

और फिर खुशनवीसी (सुलेखन) तक तो अमन-शान्ति रहेगी, लेकिन क्या आगे भी बढ़िएगा? चित्रों का ज़िक्र भी कीजिएगा? अख़बार में लिखा था कि आप चित्रों की प्रदर्शनी का प्रबंध कर रहे हैं। यह सच है तो ऐ दोस्त समय-समय पर मुझे अपने कुशल-मंगल से सूचित करते रहियेगा, क्योंकि अगर कराची सबसे अलग-थलग कोई जगह नहीं, तो आपको बहुत साहस से काम लेना पड़ेगा और आश्चर्य नहीं कि लोग आपका हाल देखकर सबक़ हासिल करें।

हमारे देश में इस समय कोई भी संस्थान ऐसा नहीं जिसे सही अर्थों में आर्ट स्कूल कह सकें। लाहौर यूनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में आर्ट एक विषय की हैसियत से शामिल था। लेकिन यह एक मिश्रित गोरखधंधा था जिसमें थोड़ा सा संगीत, थोड़ी सी चित्रकारी और कुछ उद्योग और दस्तकारी, सब चुटकी-चुटकी भर फेंक

---

[i] *तुग़राः अरबी फ़ारसी की कलात्मक और सजावटी लिखावट। (अनु.)*

[ii] *चित्रकला में कई काग़ज़ों को चिपकाकर बनाया हुआ गत्ता या दफ़्ती, जिसपर सुन्दर अक्षरों पर लिखकर कमरे की सजावट के लिए लगाया जाता है। (अनु.)*

दी गयी और इस माजून को एक स्त्रियोचित मनोरंजन समझकर केवल लड़कियों के लिए आरक्षित कर दिया गया। यह विषय अब भी पाठ्यक्रम में मौजूद है। लेकिन कब तक? फ़िलहाल तो एक यूरोपियन महिला उपलब्ध हैं जो यह विषय पढ़ाती हैं। वे कहीं इधर-उधर हो गईं और कोई महिला उनकी जगह उपलब्ध न हुई तो यह क़िस्सा भी पाक हो जाएगा, क्योंकि लड़कियों को पढ़ाने का काम ख़ुदा-न-ख़्वास्ता किसी मर्द के सपुर्द हुआ तो भूकंप न आजाऐंगे? और फिर इस विषय का हुलिया भी तेज़ी से बदल रहा है। संगीत तो लपेट करके रख दिया गया है, क्योंकि भला किसी की मजाल तो हो कि उसकी बेटी उसके दस्तख़त से यह लिखवा भेजे कि हमें गाने का शौक़ है?

बाक़ी रही चित्रकारी तो एक मिलने वाले पिछले दिन सुना गए कि एक कॉलेज ने कहलवा भेजा है कि हमारी लड़कियाँ प्राणधारियों की शक्लें न बनाएँगी। लिहाज़ा सुझाव हो रहा है कि चित्रकारी का अभ्यास सिर्फ़ सेब, नाशपाती, मर्तबान या पहाड़ों, नदियों, जंगल पर किया जाए। इस पर एकाध जगह बहस हुई। शरीयत का क़दम बीच में आया। एक उदार-पंथी मौलवी साहब ने सिर्फ़ इतनी ढील दी कि हाथ के बने हुए चित्र तो हरगिज़ जायज़ नहीं, फ़ोटो अलबत्ता जायज़ है। वजह यह बताई गयी कि फ़ोटो में इंसान की तस्वीर हूबहू वैसी ही होती है। हाथ से चित्र बनाया जाए तो उसमें झूठ ज़रूर रिस आता है। किसी ने कहा फ़ोटो भी तो कई कौशलों से ली जाती है और कुछ फ़ोटोग्राफ़र भी तो बड़े कलाकार होते हैं। जवाब मिला कि कुशलता और औपचारिकता से काम लिया जाए तो फ़ोटो भी जायज़ नहीं रहता। संक्षेप में यह कि उनके निकट उसी एक फ़ोटोग्राफ़र का काम सत्य व शुचिता को प्रतिबिंबित करता है जो लाहौर के चिड़ियाघर के बाहर चार आने में तस्वीर खींचता है। यह हाल तो जानदार चीज़ों का है। बाक़ी रहे जंगल, पहाड़, नदी तो वहाँ भी एक न एक दिन कोई सत्यनिष्ठ कोतवाल चित्रकारों के झूठ को गर्दन से जा दबोचेगा। और आप चीख़ते और सिसकते रह जाऐंगे कि यह 'वान गाग' है! यह तो बहुत बड़ा आर्टिस्ट है! और आपके हाथों से चित्र नोचकर फाड़ दिया जाएगा।

इन हालात में चुग़ताई[1] के जीने की संभावना बहुत कम है। कोई बात "सच" भी होती है उसके चित्रों में? पेड़ तक तो मजनूँ की उंगलियाँ मालूम होते हैं। और फिर इंसानों के चित्र बनाने से भी तो वह नहीं चूकता, और सिर्फ़ पुरुष ही नहीं बल्कि स्त्रियाँ भी। मृग-नयनी, उघड़े स्तन और कभी-कभार अंगिया के बंद तक दिखाई दे जाते हैं। हालाँकि यक़ीन से कुछ कहना मुश्किल होता है, क्योंकि चुग़ताई के चित्रों में तस्मे, डोरियाँ, फुंदने बहुत होते हैं, और समझ में नहीं आता कि यह घुंडी या डोरी लैला के लिबास का हिस्सा है, या उसकी ऊँटनी के साज़-सामान का। लेकिन चुग़ताई की वजह से एक सुविधा ज़रूर नज़र आती है। वह यह कि ले-देकर यही हमारा एक चित्रकार है। इसे दफ़न कर दिया तो यह महामारी फ़ौरन थम जाएगी और हमारी चित्रकारी यमराज के एक ही प्रहार से हमेशा के लिए पवित्र हो जाएगी। बाक़ी रहे मुग़लों के प्राचीन चित्र या ईरानी चित्रकारों के प्राचीन नमूने जो चंद लोगों के पास पवित्र अवशेष के रूप में सुरक्षित हैं, या जिनकी इंडिया ऑफ़िस के संग्रहालय के विभाजन के बाद पाकिस्तान को मिल जाने की उम्मीद है, तो उनको किसी और देश

---

[1] *अब्दुर्रहमान चुग़ताई (1894-1975): पाकिस्तान के चित्रकार, जिन्होंने लघु चित्रकला, मुग़ल चित्रकारी, सुलेखन की इस्लामी परंपरा, और फूल पत्तियों से सुसज्जित नवीन कला के मिश्रित प्रभाव से अपनी एक पृथक शैली का सृजन किया। (अनुवादक)*

के हाथ बेचकर दाम वसूल किए जा सकते हैं। क्या कराची में लोगों का यह विचार नहीं? अगर नहीं तो कराची सबसे अलग-थलग कोई जगह होगी।

लेकिन यह कैसे हो सकता है? कराची कौन सा ऐसा टापू है और कौन से गुमशुदा महाद्वीप में स्थित है कि इर्द-गिर्द के समुद्र की कोई लहर वहाँ तक न पहुँच सकेगी? आपको निर्माण और सृजन करने की सूझ रही है, लेकिन यहाँ तो विध्वंस का बाज़ार गर्म है। हाथों से लाठी छीनकर उसकी जगह लेखनी और तूलिका आप कैसे रख देंगे? आप कोई सी हलचल पैदा कीजिए, आपके देखते ही देखते वह विध्वंस की राह पर चल पड़ती है। लोग जिस चीज़ का नारा लगाकर उठते हैं, सबसे पहले उसी चीज़ का खून कर लेते हैं। आप कहिए कि रमज़ान का सम्मान वाजिब है, तो लोग टोलियाँ बना-बनाकर बाज़ारों में ढूँढते फिरते हैं कि किसका मुँह काला करें। आप इस्लाम की दावत दीजिए, तो तलाशी शुरू हो जाती है कि किस के कोड़े लगाऐं? किसे संगसार करें? आप लज्जा व शील का उपदेश दीजिए, तो लोग बीच बाज़ार में औरतों के मुँह पर थूकने लगते हैं, और बच्चियों पर अपना पाशविक बल आज़माते हैं:

मुझको तो सिखा दी है इफ़रंग ने ज़िंदीक़ी
इस दौर के मुल्ला हैं क्यों नंग-ए-मुसलमानी?
(मुझको तो ख़ैर फ़िरंगियों ने नास्तिकता सिखा दी है,
लेकिन इस युग के मुल्लाओं से इस्लाम क्यों लज्जित है?

ऐसे क्रोधपूर्ण वातावरण में भी आज तक कहीं आर्ट पनपा है? आर्ट के लिए तो नियम व संयम और स्थिरता और शिष्टाचार और स्वतंत्रता अनिवार्य हैं। या फिर कोई जूनून कोई उमंग कोई इश्क़ जो दिलों के दरवाज़े खोल दे और उनमें से काव्य, गीत और रंग के तूफ़ान उछल-उछलकर बाहर निकल पड़ें। क्या कभी आर्ट ऐसे में भी पनपता है कि हर बड़े को संपत्ति व सत्ता के लोभ ने अंधा और बहरा कर रखा है और हर छोटा अपनी विवशता का बदला हर पड़ोसी और राहगीर से लेने पर तुला हो; न कोई आर्थिक व्यवस्था ऐसी हो कि हर वस्तु का पूरा दाम और हर दाम की पूरी वस्तु नसीब हो, और लोग उपवास के डर से मुक्त होकर संतोष की आग़ोश में थोड़ी आँख झपक लें; न कोई नैतिक नियम ऐसा हो कि लोगों को इस दुनिया या उस दुनिया में कहीं भी प्रतिफल व दंड की आशा या भय हो; न खुशी का कोई ऐसा झोंका आए कि पेड़ों की टहनियाँ मस्त होकर झूमें और पत्तों की सरसराहाट से आप ही आप गीत फूटें; न सुरक्षा का कोई कुंज ऐसा हो जहाँ आपका कलाकार ध्यान की धूनी रमाकर बैठ जाए और आपके लिए चित्र बनाता रहे; न आस-पास कोई ऐसी निराली बस्ती हो जहाँ कवि मुसाफ़िर बनकर घूमता फिरे और लोग उसे दीवाना अजनबी समझकर उसे बक लेने दें। ललित-कला मंडली तो आपने बना ली है, लेकिन डरता हूँ कि कहीं पहला काम उस मंडली का यह न हो कि चंद चित्रों को अनैतिक और अश्लील कहकर जला दिया जाए; चंद चित्रकारों पर व्यभिचार और विधर्मिता का आरोप लगाकर उन्हें अपमानित किया जाए। या फिर उनके सिर पर ऐसे लोग सवार कर दिए जाएँ जो उनके हुनर को खुरदुरी से खुरदुरी कसौटियों पर परखें और उन पर स्पष्ट करदें कि जिस श्रेष्ठता का उन्हें दावा था उसका दौर अब बीत गया:

हैं अह्ल-ए-ख़िरद किस रविश-ए-ख़ास पे नाज़ाँ
पाबस्तगी-ए-रस्मो-रहे आम बहुत है

(बुद्धिजीवियों को किस विशेष या नवीन पथ पर चलने पर गर्व है ?
परंपरा व सामान्य राह पर चलने की प्रतिबद्धता तो बहुत आम है।)

मैं जानता हूँ कि आप आर्ट को मौज-मस्ती नहीं समझते। आप इसे सिर्फ़ सम्पन्नता का दिल बहलावा नहीं समझते। आप ऐसे नहीं कि आपको प्राणधारी ही की चित्रकारी पर आग्रह हो, या सिर्फ़ चित्र ही पर आग्रह हो। सुन्दरता को अधिकार है जहाँ चाहे रहे ,जो रूप चाहे अपनाये, सिर्फ़ यह है कि ज़िंदा रहे और अमीर-ग़रीब, छोटे-बड़े, अदना-आला सब पर अपने वरदानों का द्वार खोल दे। एक ज़माना था कि आर्ट और उद्योग व दस्तकारी का आपस में चोली-दामन का साथ था। आप तो उस स्वर्ण-युग को वापस लाना चाहते होंगे, ताकि आर्ट की आभा बच्चों के खिलौनों में, किसान की लुंगी में, सैलानी के हाथ की छड़ी में, पनहारी के मिट्टी के घड़ों में, संक्षेप में जीवन के हर गोशे में दीप्तिमान हो। लेकिन जो नन्हे-नन्हे दीप यहाँ वहाँ टिमटिमा रहे हैं, उन्हें ही बुझा दिया गया तो लाखों इंसानों की ज़िंदगियाँ जो अभी तक अंधकारमय हैं, वो कैसे जगमगाएँगी? क्या कराची में जो आपके सहचर हैं उन्हें इस बात का अहसास है? अगर है तो उन्हें बता दीजिए कि आर्ट की एक मुस्कराहट के लिए उन्हें इस मुस्कान-विमुख माहौल में कई मरुस्थल छानने पड़ेंगे।

फ़रहते नीस्त कि दर पहलू-ए आँ सद ग़म नीस्त
रोज़-ए-मौलूद-ए-जहाँ कम ज़ शब-ए-मातम नीस्त
(यह सुख नहीं कि उसके दिल में सौ दुख नहीं
दुनिया का जन्म-दिन मातम की रात से कम नहीं)

यदि यह केवल मेरा भ्रम है तो ऐ मेरे दोस्त, फिर कराची सबसे अलग-थलग कोई जगह होगी; तो फिर ऐ दोस्त हम सबको वहाँ बुला लीजिए। या कराची को इतना फैला दीजिए कि हम सब उसमें समा जाएँ ।

कराची में आपने बहुत कुछ रसूख़ (प्रभाव) पैदा कर लिया होगा। आपकी निष्कपटता और सम्यक दृष्टिकोण के सब लोग क़ायल होंगे। बड़े-बड़े अधिकारियों से आपकी मुलाक़ात होती होगी। बड़े-बड़े सत्ताधारियों व प्राधिकारियों का नैकट्य नसीब होगा। उनसे कहिए किः

मंज़िल-ए-राहरवाँ दूर भी दुश्वार भी है
कोई इस क़ाफ़िले में क़ाफ़िला-सालार भी है?

अनुवादक : डॉ. आफ़ताब अहमद
व्याख्याता, हिंदी-उर्दू, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क